भाग-1

किसे कहते हैं विज्ञान?

रॉबिन डनबार

हमारे पास ज्ञान तक पहुँचने का एकमात्र साधन प्रयोग और परीक्षण है। बाकी सब काव्य है, कल्पना है।

- मैक्स प्लॉक

वैज्ञानिक यह प्रश्न पूछने के लिए शायद ही कभी रुकते हों कि क्या है जो उनके काम को परिभाषित करता है। वे व्यावहारिक होते हैं, इसलिए वे कुछ करते रहने में विश्वास रखते हैं। दूसरी ओर दार्शनिकों ने बहुत-सा समय इस बात पर विचार करने में लगाया है कि विज्ञान को कैसे परिभाषित किया जाए, और (यदि हम ऐसा कर पाएँ तो) हम धर्म से उस के अन्तर को कैसे समझें। दोनों ही समूहों के लोगों का सरोकार अन्ततः एक ही केन्द्रीय मुद्दे से रहा है, यानी संसार से सम्बन्धित हमारे ज्ञान की निश्चितता का मसला। लेकिन दोनों के परिप्रेक्ष्य बहुत ही अलग रहे हैं। वैज्ञानिकों की चिन्ता आम तौर पर संसार के बारे में उनके द्वारा निकाले गए खास निष्कर्षों की मान्यता को लेकर रही है; दार्शनिक अमूमन इस बात के बारे में ज़्यादा चिन्तित रहे हैं कि सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया की प्रकृति क्या है। अपनी जाँच को प्रारम्भ करने का सही प्रस्थान बिन्दु दार्शनिक है।

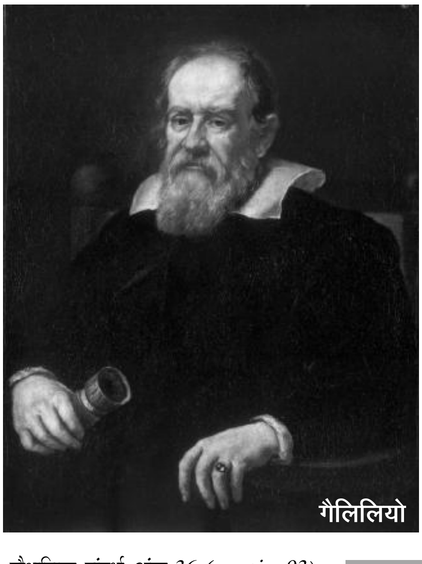
गैलिलियो

विज्ञान की कला

यदि हम आधुनिक विज्ञान का प्रारम्भ 1632 में गैलिलियो से मानते हैं तो विज्ञान के दर्शन की शुरुआत अँग्रेज़ दार्शनिक और साहित्यकार फ्रांसिस बेकन से मानी जा सकती है। बेकन ने 1606 से लेकर 1626 में अपनी मृत्यु तक पुस्तकों की

एक शृंखला में अनुभवसिद्ध विज्ञान (*एम्पिरिकल साइंस*) का पक्ष लिया। बेकन की नज़र में धर्मशास्त्र के मध्ययुगीन दार्शनिकों की बातें तुच्छ, घिसी-पिटी, तथा वक्त बरबाद करने वाली थीं, और उन्होंने उन्हें जम कर लताड़ा। मध्ययुगीन विद्वानों के विरुद्ध बेकन के हमले के केन्द्र में ज्ञान की निश्चितता का मसला था - हम कैसे पक्के तौर पर कह सकते हैं कि हमारा ज्ञान पूर्ण रूप से विश्वसनीय है? सुकरात और उनके बाद के यूनानी दार्शनिकों द्वारा स्थापित परम्परा ने कार्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर तर्कसंगत निष्कर्ष को प्रधानता दी थी। बेकन का मानना था कि लगभग छः सदियों तक मध्यकालीन दर्शन को सताने वाले सब अनसुलझे (और कभी न सुलझ पाने वाले) झगड़ों का मूल कारण यही था।

फ्रांसिस बेकन

बेकन के विचार में अनुभव आधारित प्रेक्षण यानी अवलोकन तथा विधिवत, व्यवस्थित प्रयोग के माध्यम से ही किसी परिकल्पना (हाइपॉथिसिस) को उपयुक्त ढंग से परखा जा सकता है - उनकी नज़र में परख का यही एकमात्र तरीका था। विज्ञान के विकास में बेकन का योगदान यही है कि उन्होंने इस बात के महत्व को चिन्हित किया। उनके द्वारा दिए गए तर्क आने वाली दो सदियों में पेशेवर वैज्ञानिकों के लिए बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुए। लेकिन अपनी इस नई पद्धति की खूबियों को प्रशंसित करते हुए बेकन ने अपने से पहले के दार्शनिकों के साथ न्याय करने में बहुत कम उदारता दिखाई। यह तो सही है कि मध्यकालीन युग में बाल की खाल उतारने की प्रवृत्ति थी और इसलिए बेकन के आक्रोश को उचित ठहराया जा सकता है। लेकिन कई अपवाद भी थे और बेकन उनके

ऋणी भी थे। इनमें निकलस ओरेस्मे, ग्रोसटेस्ट, डन्स स्कोट्स, विलियम ऑफ ऑकम तथा रॉजर बेकन मुख्य तौर से महत्वपूर्ण थे। इन सब ने भी इस बात के महत्व पर बल दिया था कि दलीलों को तर्क की कसौटी पर बहुत ही सख्ती के साथ कसा जाना चाहिए। वे भी उन सिद्धान्तों का गुणगान करते थे जिनके लिए न्यूनतम अप्रमाणित मान्यताओं की आवश्यकता हो (एक महत्वपूर्ण धारणा जिसे आज तक *ऑकम का उस्तरा* के नाम से जाना जाता है)। और वे परिकल्पनाओं की अनुभव आधारित जाँच के हिमायती भी थे। तेरहवीं सदी में ही ग्रोसटेस्ट विशेष तथ्यों के आधार पर सामान्य परिणाम निकालने से सम्बन्धित समस्याओं पर, तथा ज्ञान की वैधता पर गहन विचार कर रहे थे। लेकिन अपने वक्त के ये महामानव भी मध्ययुग के अरब कीमियागरों (लोहे को सोने में बदलने की सम्भावना में विश्वास रखने वालों) और दर्शनशास्त्रियों के सामने फीके पड़ गए - अल हशम, मुहम्मद इब्न मूसा अल ख्वारिज़्मी और कमाल-अल-दीन-अल-फारिसी जैसे लोगों ने नौवीं और पन्द्रहवीं सदी के बीच के समयकाल में परीक्षण की कला को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया था।

बेकन द्वारा अरस्तू की घोर निन्दा और बेकद्री तो और भी अधिक अनुचित थी। यह तो पक्की बात है कि अरस्तू की कृतियों को मध्ययुगीन विद्वानों के हाथों काफी नुकसान उठाना पड़ा था। विश्लेषण करने सम्बन्धी उनकी ज़बरदस्त शक्तियों और उन के ज्ञान के अद्‌भुत विस्तार को देखते हुए इन विद्वानों ने अरस्तू को अचूक मान लिया था। दुर्भाग्य यह था कि अरस्तू को स्वयं उनकी कृतियों की बजाय मध्ययुगीन विद्वानों के स्वार्थसिद्धी पर आधारित संकलनों के माध्यम से अधिक जाना गया। बेकन की भर्त्सना का शिकार वह महान बहुविद् कम और तथाकथित मध्ययुगीन अरस्तूवादी अधिक थे। क्योंकि, चौथी सदी ईसा पूर्व में जो कुछ अरस्तू ने हासिल किया, वह सच में उल्लेखनीय और कमाल की बात थी।

अरस्तू अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले यूनानी दार्शनिकों में से सर्वप्रथम तो नहीं थे लेकिन अपने समकालीनों में इसलिए अलग खड़े दिखाई देते थे कि वे बहुत ही सावधानी से और सटीक ढंग से कार्य करते थे। वे बहुत बार यह शिकायत करते थे कि उनके पूर्ववर्तियों का कार्य लापरवाह प्रेक्षण (ऑब्ज़र्वेशन) का शिकार था। बुनियादी तौर पर एक और सन्दर्भ में वे उन सबसे अलग थे - वे परिकल्पनाओं को जाँचने के लिए अनुभव आधारित प्रेक्षण के इस्तेमाल के महत्व पर ज़ोर देते थे। उनसे पहले के दार्शनिक तो प्रेक्षण को केवल अनुमान लगाने हेतु एक प्रस्थान-बिन्दु के तौर पर प्रयोग में लाने की ओर प्रवृत्त थे, लेकिन अरस्तू अपने सिद्धान्तों की जाँच-परख प्रकृति की कसौटी पर

करने को तैयार रहते थे। वे इस बात पर बल देते थे कि अवलोकन और प्रेक्षण से हासिल किए गए तथ्यों का महत्व सिद्धान्तों के मुकाबले अधिक है। एक और तत्व है जो उपरोक्त दो विशेषताओं के साथ मिलकर एक बहुत ही मज़बूत कार्यप्रणाली प्रदान करता है - कड़ाई के साथ, तार्किक आधार पर कारण-कार्य सम्बन्धों का प्रयोग करते हुए ऐसी कारणात्मक परिकल्पनाओं का विकास जिन्हें अनुभव आधारित प्रमाणों की मदद से जाँचा जा सके।

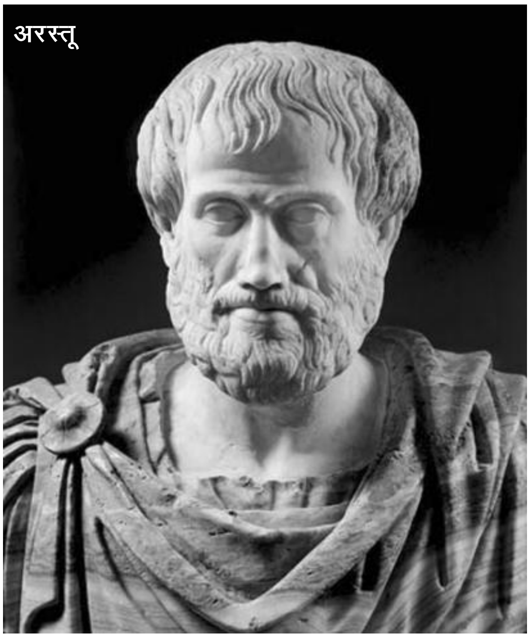
अरस्तू

अरस्तू और बेकन, दोनों के दृष्टिकोणों के केन्द्र में परिकल्पनाओं को जाँचने-परखने पर बल देने की बात है। लेकिन बेकन के बाद की सदियों में *वैज्ञानिक प्रणाली* का अर्थ *प्रायोगिक प्रणाली* हो गया, और इस का एक मुख्य कारण था विकसित हो रहे प्रयोग-आधारित विज्ञानों का बेकन द्वारा पुरज़ोर समर्थन। दुर्भाग्य से, ऐसा करने का अर्थ है सामान्य को विशेष से गड्ड-मड्ड करना। प्रयोग परिकल्पनाओं को जाँचने-परखने का एक विशेष तरीका है, लेकिन यह भी नहीं है कि ऐसा करने का यही एकमात्र तरीका हो। परिकल्पनाओं को प्रेक्षण के आधार पर भी जाँचा जा सकता है (जैसा अरस्तू ने किया) तथा उन्हें उनकी आन्तरिक तार्किक संगति एवं सामंजस्य के मूल्यांकन के आधार पर भी परखा जा सकता है (जैसा यूक्लिड से पाइथॉगरस तक के महान यूनानी ज्यामितिज्ञों ने किया था)। फिर भी, प्रायोगिक तथा अवलोकन आधारित परखों में अन्तर होता है, जिसे बेकन बहुत अच्छे से पहचानते थे, और यह अन्तर इस बात का है कि प्रेक्षण आधारित तथ्य-समूहों में कई तरह के अनियंत्रित परिवर्तनशील कारकों का खतरा रहता है। प्रयोगों में यह

महत्वपूर्ण, निर्णायक फायदा रहता है कि वैज्ञानिक अधिकतर परिवर्तनशील कारकों को नियंत्रित कर सकता है - उस परिवर्तनशील कारक को छोड़ते हुए जिसमें उसकी विशेष दिलचस्पी है।

संसार में लगभग सब-कुछ कई तरह के कारकों से प्रभावित होता है, और इसके चलते चकरा देने वाले परिवर्तनशील कारक एक वैज्ञानिक के लिए अहितकारी सिद्ध होते हैं। आइए एक सामान्य-सी समस्या को देखें - फसलों का विकास किस बात से निर्धारित होता है? सम्भावित कारकों की एक बहुत ही लम्बी सूची बन सकती है - वर्षा की मात्रा, तापमान, हवा, मिट्टी की किस्म, ज़मीन की ढलान और रूप-आकार, बुआई का महीना, बुआई के समय का राशिचिन्ह, वसन्त ऋतु के समय प्रवास करने वाले परिन्दों की संख्या, देवताओं को चढ़ाई गई बलियों की संख्या, संसार के प्रारम्भ से अब तक गुज़र चुके दिनों की संख्या - और ये तो कुछ ऐसी सम्भावनाएँ हैं जो स्वाभाविक तौर पर पहली ही नज़र में दिखाई देती हैं। इनमें से कोई भी संकेत स्वयं में आन्तरिक तौर पर गलत नहीं है - ये सभी अच्छी-खासी वैज्ञानिक पूर्व-धारणाएँ हैं। हमारी समस्या यह फैसला करने की है कि कौन-से कारक सच में पौधे के विकास को प्रभावित करते हैं और कौन-से कारक ऐसे आकस्मिक परस्पर सम्बन्धों के दायरे में आते हैं जिनका पौधे के विकास से कोई सम्बन्ध न हो।

अब तो हम यह जानते हैं कि पहले पाँच कारक सच में पौधे के विकास को प्रभावित करते हैं। छठा, सातवाँ और आठवाँ पौधे के विकास से असम्बद्ध है लेकिन उनका सम्बन्ध ऐसे परिवर्तनशील कारकों से है जो उस विकास को प्रभावित करते हैं, और अन्तिम दो तो लगभग निश्चित तौर पर अप्रासंगिक हैं। लेकिन असल बात तो यह है कि हमें पहले से इस बात का ज्ञान नहीं होगा। यदि हम फसलों के प्रदर्शन के आधार पर केवल एक पूर्व-धारणा को भी जाँचें, तो सम्भव है कि इन सभी परिकल्पनाओं के लिए भविष्यवाणी और यथार्थ के बीच का अच्छा मेल हो जाए। मसलन, बुआई के समय के राशिचिन्ह को फसलों की बुआई करने के लिए मार्गदर्शक के तौर पर प्रयोग में लाए जाने से शायद ईस्वी पूर्व की अन्तिम सदियों के मध्य यूनान में साल-दर-साल बहुत तसल्ली-बख्श नतीजे मिले हों।

यह इसलिए कि हालाँकि पौधों के विकास पर स्वयं ग्रहों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, आकाश में उन की हरकत का नज़दीकी सम्बन्ध पौधों के विकास को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों (उल्लेखनीय तौर पर वर्षा और तापमान का मौसमी ताना-बाना) से तो बन ही जाता है। लेकिन इस नियम को उस समय के दक्षिण अफ्रीका में लागू करना घातक सिद्ध होता। इसके अलावा,

इससे आज भी हमें कोई मदद नहीं मिलेगी - मध्य यूनान में भी नहीं - क्योंकि धरती के धुरी-चक्र के अग्रगमन (अपने अक्ष पर घूमते हुए, धरती की डगमगाहट के चलते ध्रुवीय सितारों और धरती के बीच की पंक्तिबद्धता की दिशा में होने वाला क्रमिक बदलाव) का अर्थ है कि राशिचिन्हों का समय-निर्धारण अरस्तू के काल से अब तक एक पूरा चक्र घूम चुका है: यह क्रमबद्धता अब राशिचक्र की 12वीं राशि मीन से प्रारम्भ होती है न कि पहली राशि मेष से, जैसा 2500 साल पहले हुआ करता था।

एक और विशेष उदाहरण लीजिए। इज़राइल के तेल अवीव विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं ने हाल ही में बताया है कि पतली मूँछों वाले लोगों में अल्सर यानी फोड़ा होने की अधिक सम्भावना रहती है। यह खबर मुझे तुरन्त अपनी मूँछें सफाचट करने को प्रेरित कर सकती है ताकि मैं फोड़े होने की सम्भावना को कम कर सकूँ। लेकिन ऐसा करना व्यर्थ ही होगा - बल्कि यह भी हो सकता है कि इसका विपरीत ही प्रभाव हो और अल्सर होने की सम्भावनाओं को बढ़ा दे। कारण यह है कि मूछें स्वयं में अल्सर के विकास को प्रभावित नहीं करतीं। बल्कि मेरा व्यक्तित्व है जो दाढ़ी बनाने की मेरी आदतों तथा अल्सर का शिकार होने की मेरी सम्भावना, दोनों को प्रभावित करता है। बहुत ही सफाई से बनाई गई कतरनी मूँछें तो कुछ और नहीं बल्कि मेरे सामान्य हाव-भाव और व्यवहार से उनके सह-सम्बन्ध का नतीजा हैं। अधिक सम्भावना है कि तेज़-मिज़ाज, चिड़चिड़े और घबराए हुए लोग कतरनी मूँछें तो रखेंगे ही, उन्हें अल्सर होने की भी अधिक गुंजाइश होगी। अपनी मूँछ को बेतरतीब बढ़ने देना या फिर उसे पूरी तरह ही सफाचट कर देना शायद वास्तव में मुझे अधिक असहज और चिड़चिड़ा बना दे, और मुझे अल्सर होने की सम्भावना भी अधिक हो जाए। परस्पर सम्बन्धों से कारणों का संकेत नहीं मिलता। रोज़मर्रा की ही तरह विज्ञान की केन्द्रीय समस्या यह है कि एक ओर असल कारणात्मक प्रभावों और दूसरी ओर चकरा देने वाले परिवर्तनशील कारकों की वजह से उत्पन्न जाली प्रभावों में अन्तर कैसे किया जाए?

बेकन के समयकाल में यथार्थ के संसार की प्राकृतिक घटनाओं में सम्बन्धों की जटिलता को खोलने की कोशिश असम्भव ही थी जब तक इसके लिए ऐसे प्रयोगों की मदद न ली जाए जिन में बाकी सभी कारकों को स्थिर रखते हुए एक ही कारक में हेर-फेर की इजाज़त हो। बेकन और उनके उत्तराधिकारियों के लिए अवलोकन से उभरे तथ्य-समूह तो बस सिद्धान्त-निर्माण के लिए प्रस्थान-बिन्दु मात्र थे। अवलोकन पर आधारित परिकल्पना से लैस वैज्ञानिक का कार्य था कि वह कड़ाई से लागू की गई प्रायोगिक जाँचों की एक लड़ी के आधार पर सभी

नकली सह-सम्बन्धों को खारिज कर पाए। लेकिन पिछली लगभग एक सदी में गणितीय साँख्यिकी के विकास ने हमें ऐसी प्रबल तकनीकें मुहैया करवाई हैं जिन की मदद से हम शुद्ध रूप से अवलोकन-आधारित तथ्य-समूहों पर समतुल्य परीक्षण कर सकते हैं। खास तौर से वर्तमान सदी के उत्तरार्ध में साँख्यिकीय विश्लेषण (जो विभिन्न कारकों के प्रभाव को अलग करने के लिए गणितीय तकनीकों का प्रयोग करता है) ने गैर-प्रायोगिक अनुभव-आधारित अध्ययनों की सँख्या में नाटकीय वृद्धि को सम्भव बनाया है।

इस बदलाव के महत्वपूर्ण नतीजे निकले हैं। यह विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में खास देखने को मिला है, जैसे व्यवहारवादी जीवविज्ञान, जिस में प्रायोगिक जोड़-तोड़ के कारण उन्हीं प्राकृतिक घटनाओं की बरबादी भी हो सकती है जिनका अध्ययन किया जाना है। मसलन, कुछ ही अरसे पहले तक यह आम बात थी कि बन्दरों और गोरिल्ला के बीच के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन जानवरों के ऐसे समूहों को इकट्ठा करके किया जाता था जो एक-दूसरे के लिए अनजान हों। लेकिन कई प्राइमेट/नरवानर समूहों की संरचना बहुत ही जटिल होती है क्योंकि यह एक जानवर के दूसरे जानवरों के साथ ऐसे निश्चित सम्बन्धों पर आधारित होती है जो बहुत ही लम्बे अरसे से बनते चले आए हैं, कभी-कभी तो कई पीढ़ियों पहले से। इसमें कई महत्वपूर्ण सहायक कारक रहते हैं, जैसे रिश्तेदारी, लम्बे दौर से चली आ रही जान-पहचान और बारम्बार परस्पर मेल-जोल पर आधारित दोस्तियाँ, यहाँ तक कि किन्हीं अन्य सदस्यों के बीच सम्बन्ध होने की जानकारी।

इस प्रकार, हालाँकि अनजानों में से समूहों को संयोजित करने की प्रक्रिया हमें इस बारे में बहुत कुछ बता सकती है कि वानर किस प्रकार नए सम्बन्ध स्थापित करते हैं, समय (या इतिहास) की गहराई के न होने का अर्थ यह है कि प्राइमेट समूहों को निर्मित करने वाले कुछ मुख्य अंश इन प्रायोगिक स्थितियों में गायब हैं। यदि वे प्रक्रियाएँ उन तौर-तरीकों के लिए महत्वपूर्ण हैं जिन के तहत जानवर अपने सम्बन्ध बनाते हैं, तो इनकी अनुपस्थिति की वजह से इस बात में नाटकीय तबदीली आ सकती है कि जानवर किस प्रकार के सम्बन्ध विकसित करते हैं। और इससे समूह की प्रत्यक्ष संरचना भी प्रभावित होगी। मसलन, मुझे गेलाडा बबून (अफ्रीका में पाया जाने वाला बड़ा बन्दर) पर किए गए अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जब एक-दूसरे से रिश्ता न होने की वजह से समूहों के सगोत्रता पर आधारित व्यवस्थित सम्बन्ध न हों तो बन्दर किन्हीं शक्तिशाली उच्च-प्रतिष्ठितों के साथ सम्बन्ध बनाना पसन्द करते हैं, जबकि अच्छे से विकसित, सम्बन्ध-आधारित व्यवस्थित समूहों में वे नज़दीकी सम्बन्धियों से जुड़ना पसन्द करते हैं (इस बात को

भी दरकिनार करते हुए कि समूह में उन का स्थान क्या है)।

तो विज्ञान एक प्रणाली है विश्व के बारे में जानकारी हासिल करने की - वह कोई विशेष सिद्धान्त का कलेवर नहीं है। विज्ञान को चाहे जैसे भी प्रयोग में लाया जाए, उसका मुख्य उद्देश्य कारणों को स्थापित करने का है। अमेरिकी दार्शनिक जॉर्ज गेल की शब्दावली में कहें तो इस समझ और अहसास ने कुछ दार्शनिकों को *कुकबुक विज्ञान* और *कारण स्थापित करने वाले विज्ञान* के बीच फर्क करने की ओर प्रवृत्त किया है। यह अन्तर इस बात को पहचानता है कि विज्ञान के अन्तर्गत दो स्पष्ट, अलग-अलग कदम आते हैं, यानी अनुभव आधारित प्रेक्षणों का संचय (जिसे सामान्य नियमों के पुलिन्दे का रूप मिल जाता है), और ऐसे कारणों की खोज जो हमें बताएँ-समझाएँ कि ये सामान्य नियम क्यों अस्तित्व में हैं।

यह हमें *जानना कैसे* और *जानना कि* के बीच के उस अन्तर की याद दिलाता है जिसकी ओर जाने-माने दार्शनिक गिल्बर्ट राइल ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक *द कॉन्सेप्ट ऑफ माइंड* में हमारा ध्यान आकर्षित किया था। राइल के मुताबिक *मुझे मालूम है **क** को कैसे किया जाना है* और *मुझे मालूम है कि **क** है क्योंकि...* कह पाने में अन्तर है। पहली बात तकनीकी दक्षता की ओर इशारा करती है। लेकिन यह अर्थ दूसरी बात से ही निकलता है कि बोलने वाले को मालूम है कि ***क*** क्यों उसी ढंग से कार्य करता है जो हमारे सामने है। मैं राइल की बात को थोड़ा दूसरे तरीके से कहना चाहूँगा,

गिल्बर्ट राइल

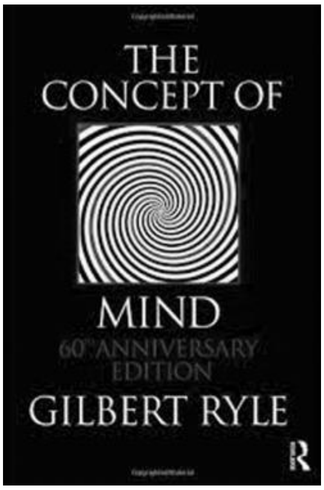

रोज़मर्रा के जीवन से कोई उदाहरण सोचिए जहाँ चकरा देने वाले परिवर्तनशील कारकों की वजह से कार्य-कारण सम्बन्ध देख पाने में दिक्कत पैदा होती है। बेकन विज्ञान में प्रयोगों की भूमिका पर ज़ोर क्यों देते हैं?

इस खण्ड में दो तरह के ज्ञान के उदाहरण दिए हैं - जानना कि कैसे और जानना कि क्यों। दोनों की विज्ञान की प्रगति में भूमिका है हालाँकि, वह समान नहीं है। ज्ञान के इन दोनों प्रकारों में प्रयोगों की क्या भूमिका होगी?

'जानना कि क्यों' किस हद तक अप्रेक्षणीय इकाइयों के सन्दर्भ में यथार्थवादी होगा?

यानी *जानना कि* (***क*** है) और *जानना क्यों* (***क*** है), अलबत्ता बात तो वही है।

यदि हम अपने उस उदाहरण पर वापिस जाएँ कि पौधे किस कारण से बढ़ते हैं तो इस अन्तर का महत्व स्पष्ट हो जाएगा। राशिचिन्हों का प्रयोग या वसन्त ऋतु में परिन्दों के प्रवास का आगमन यह तय करने का बहुत ही प्रभावशाली नियम हो सकता है कि फसलें कब बोई जाएँ। यह कुकबुक विज्ञान हैः कुछ नियम जो हमें बताएँ कि क्या होगा, जो आम तौर पर ऐसी भाषा में लिपटे होते हैं कि *यदि...तो...* (*यदि तुम फसल परिन्दों के आगमन पर बोते हो, तो तुम्हें गर्मियों में बहुत फसल मिलेगी*)। लेकिन ये नियम कामचलाऊ ही हैंः ये अन्तःसम्बन्ध हैं जो प्राकृतिक संसार में कई सालों के अनुभव को सामान्य नियमों का रूप दे दिए जाने पर आधारित हैं। ऐसे कामचलाऊ नियम रोज़मर्रा के उद्देश्यों के लिए पूर्ण रूप से पर्याप्त हैं।

मिस्र देश के लोग आखिर खगोलिकीय कैलेण्डर के आधार पर ही तो नील नदी में आने वाली सालाना बाढ़ की भविष्यवाणी किया करते थे - और वह इतनी सटीक होती थी कि हम भी शायद ही आज उसे मात दे सकें। मिस्र के बाशिन्दों के लिए यह सटीकता बहुत ही आवश्यक थी क्योंकि बाढ़ का समयकाल इतना कम होता था कि उससे प्राप्त हो पाने वाले लाभों को हासिल करने के लिए आवश्यक मज़दूरों की सेना को खड़ा कर पाना मुमकिन नहीं हो पाता था। मज़दूरों की इस बिखरी हुई तितर-बितर फौज को बुलावा देने के लिए कोई तरीका ज़रूरी था जिसकी मदद से बाढ़ के आगमन के बारे में काफी पहले पता लग सके।

लेकिन न तो मिस्र के और न ही यूनान के किसान को इस बात की कोई समझ थी कि क्यों इन घटनाओं के सम्बन्ध को एक-दूसरे के साथ जोड़ कर देखना चाहिए (हालाँकि शायद उनके भी अपने कोई सिद्धान्त तो रहे ही होंगे)। यदि हमारा किसान पूर्वी

अफ्रीका की ओर प्रवास कर जाए तो घोर संकट पैदा हो जाएगा क्योंकि उष्णकटिबन्धों यानी ट्रॉपिक्स में मौसमों का सिलसिला और क्रम वैसा ही नहीं होता जैसा कि पूर्वी भूमध्यसागर क्षेत्र में। इससे भी आगे, पक्षी इस क्षेत्र में से होकर उसी प्रकार प्रवास नहीं करते जैसा यूनान में करते हैं। तो, किसान गलत समय पर बुआई करेगा और बरबाद होगा। नई दुनिया के उत्तरी क्षेत्रों में पहुँचने वाले सर्वप्रथम यूरोपीय प्रवासियों की बिलकुल यही कहानी थी। कैप्टेन स्मिथ के नेतृत्व में सत्रहवीं सदी में वर्जीनिया तट पर बसाहट के लिए आने वाले लोगों को शुरुआती सालों की सर्दियों में भयानक हालात का सामना करना पड़ा था, इसलिए कि उन्होंने उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के पर्यावरण में प्रचलित, बिलकुल ही अलग तरह की कृषि की रीतियों को लागू करने की कोशिश की। यदि उन्हें वहीं के मूल निवासी इंडियन लोगों की मदद न मिली होती (जिन्होंने उन्हें स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल कृषि करना सिखाया), और यदि प्रत्येक गरमी के मौसम में प्रवासियों की मातृभूमि से रसद के जहाज़ और नए प्रवासी न आते रहते तो यह औपनिवेशिक चेष्टा प्रारम्भ के ही कुछ सालों में असफल हो गई होती।

भविष्य के बारे में पक्के तौर पर कुछ भी तभी कहा जा सकता है यदि प्रकृति में घटित होने वाली प्रक्रियाओं को संचालित करने वाली व्यवस्थाओं के बारे में हमारी समझ पुख्ता हो। और इस प्रकार, आगे होने वाले घटनाचक्र की भविष्यवाणी कर पाने की योग्यता, जो होता है उसे नियंत्रित कर पाने की क्षमता (ज़रूरत पड़ने पर प्रयोगों के ज़रिए) विज्ञान की कसौटी बन गए हैं। सार यह है कि कारण खोजना विज्ञान का उद्देश्य है, और अनुभव आधारित तथ्य-समूहों (डेटा) के प्रयोग के बल पर परिकल्पना की जाँच विज्ञान की केन्द्रीय पद्धति है।

(...जारी)

रॉबिन डनबारः यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड में सोशल एंड एवोल्यूशनरी न्यूरोसाइंस रिसर्च ग्रुप, एक्सपेरीमेंटल सायकोलॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष हैं और एवोल्यूशनरी साइकोलॉजी के प्राध्यापक हैं। बहुत-सी शैक्षिक पुस्तकें लिखी हैं और दो साल विज्ञान लेखन भी किया है।
अँग्रेज़ी से अनुवादः रमणीक मोहन।

यह लेख रॉबिन डनबार की किताब *दी ट्रबल विद साइंस*, फेबर एंड फेबर प्रकाशित, 1995, से लिया गया है।

आप इस लेख को एकलव्य द्वारा विज्ञान शिक्षण पर तैयार की जा रही पुस्तक के अन्तर्गत भी पढ़ सकेंगे।